International Journal of Sanskrit Research 2017; 3(5): 103-105

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2017; 3(5): 103-105
© 2017 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 15-07-2017
Accepted: 16-08-2017

डॉ0 इन्दुमती सिंह
पूर्व शोध छात्रा, संस्कृत एवं प्राकृत भाषा विभाग, लखनऊ वि0वि0 लखनऊ, भारत

Correspondence
डॉ0 इन्दुमती सिंह
पूर्व शोध छात्रा, संस्कृत एवं प्राकृत भाषा विभाग, लखनऊ वि0वि0 लखनऊ, भारत

सांख्य–दर्शन में मन एवं शरीर का सह सम्बन्ध

डॉ0 इन्दुमती सिंह

प्रस्तावना

भौतिक दृष्टिकोण से शान्ति की सम्भावना समाप्त हो जाने पर चिन्तनशील मानव ऐकान्तिक एवं आत्यान्तिक शान्ति हेतु जिस शास्त्र का उद्यावन किया, वही दर्शन शास्त्र है। भारतवर्ष में विश्व के सर्व प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद से ही इस दार्शनिक चिन्तन का प्रारम्भ स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है जिसका विकास उपनिषद इत्यादि ग्रन्थों में देखा जाता है।

''आत्मा वा अरे दृष्टव्यः'' अर्थात आत्म साक्षात्कार करना श्रुति का निर्देश है। संसार त्रिगुणात्मिका प्रकृति से उत्पन्न होने के कारण यह सुख–दुख एवं मोह से आच्छादित है। सुख–दुख भी संसार के साथ ही उत्पन्न होता है। भिन्न–भिन्न ऋषियों ने भिन्न–भिन्न मार्ग (विधि) से उस आत्मा का साक्षात्कार किया और इस साक्षात्कार से उन्हें जो ज्ञानपुञ्ज अर्थात परमानन्द की प्रतीति हुई उसे लोक कल्याणार्थ अपने शिष्यों में अग्रसारित किया। यही कारण है कि जिस ऋषि ने जिस मार्ग को दर्शाया वह उनका दर्शन कहलाया। सांख्या दर्शन कपिल मुनि द्वारा निर्मित होने के कारण इसे कपिल दर्शन के नाम से भी जानते है।

सृष्टिकाल से पूर्व से ही ब्रह्म ही था वह विकल्प रहित अद्वितीय तथा सत्य है। जिसे प्राकृति और पुरूष के नाम से जानते है। सांख्य के पच्चीस तत्व माने गये हैं। एक प्रकृति एक पुरूष। प्रकृति से बुद्धि, बुद्धि से अहंकार, अहंकार से पंचमहाभूतो की उत्पत्ति है। प्रकृति एक और अनेक परिणति होने वाली नित्य सत्ता है। सत्व, रज और तम की साम्यावस्था ही प्रकृति है।

''संख्या शब्द सम्पूर्वक चक्षिड ख्याञ धातु से बना हैं जिसका अर्थ है 'सम्यक् ख्यानम्' अर्थात सम्यक विचार। विवेक बृद्धि की प्राप्ति सांख्य–दर्शन के विषयों को जानने से मिलती है। इसीलिए इसे सांख्य–दर्शन कहते हैं। कहा गया है–''न हि सांख्यसम ज्ञानम्'' अर्थात ज्ञान तो सांख्य मे ही है और बिना ज्ञान के किसी भी प्रकार की सिद्धि नहीं मिलती भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है –

'नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते'

कपिल मुनि द्वारा निर्मित सांख्य दर्शन अति प्राचीन है। प्रकृति आदि तत्वों का निरूपण, जिससे होता है, वही सांख्य दर्शन है।[1] सांख्य शब्द को संख्या से निःसृत माना गया है। महाभारत के अनुसार चौबीस तत्वों की संख्या का निर्देश करने से तथा प्रकृति पुरूष से भिन्न है। इस विवेक साक्षात्कार रूप सम्यक् ज्ञान के कारण, सांख्य दर्शन के अनुसार तत्व गणना की प्रधानता के कारण इसे संख्या दर्शन कहते हैं। 'मत्स्य पुराण' में वर्णित कपिल दर्शन के अनुसार तत्वगणना की प्रधानता के कारण इसे सांख्य दर्शन के नाम से विहित किया गया है। सांख्यमतानुसार जगत का कोई स्रष्टा नहीं है। प्रकृति से ही जगत की उत्पत्ति होती है और यही सृष्टि का उपादान कारण है।[2] प्रकृति विचित्र जगत की सृष्टि, धर्म और अधर्म के आधार पर जीवों के भोग और मोक्ष के लिए करती है।

मनुष्य जन्म से लेकर जीवनपर्यन्त सुखों की अपेक्षा करता हुआ, दुःखों को ही प्राप्त करता है। वह सर्वदा दुखाग्नि में ही जलता रहता है। यद्यपि कि समस्त भौतिक सुख–सुविधाओं से सम्पन्न है किन्तु उसमें भी दुःख छुपा रहता है, क्योंकि इसमें कोई मानसिक संतुष्टि नहीं होती और इसी सुख की प्राप्ति कराना ही सांख्य दर्शन का प्रमुख उद्देश्य है।[3]

प्रकृति और पुरूष का ज्ञान अर्थात् आत्मज्ञान कराना ही इस सांख्य का उद्देश्य है। इस सांख्य को ही ज्ञान का सूक्ष्म भाग कहा गया है। उसे ही कोई साकार ब्रह्म मानता है और कोई निराकार। इस मौलिक तथ्य कि ब्रह्म ही साकार और निराकार दोनों से आबद्ध है को प्रकृति और पुरूष दोनों ही रूपों में मानता है, जिसे इस प्रकार का ज्ञान नहीं हो पाता, वह भवसागर में डूबता–उतराता रहता है। इस संसार सागर से पार उतारने वाला एक मात्र साधन सांख्य दर्शन है।[4]

सांख्य दर्शन का वर्णन श्रीमद्भागवत में कपिल मुनि द्वारा अपनी माता को दिये गये उपदेश के रूप में है। यह उपदेश कपिलमुनि ने तब दिया, जब उनकी माता ने स्वयं सांख्य तत्व के ज्ञाता अपने पुत्र कपिलमुनि को ज्ञान का उपदेश देने के लिए उनसे प्रार्थना करती हैं। तब उन्होनें उनका स्वागत कर पुरःसर मे सांख्य तत्व का सविस्तार उपदेश किया, जो भागवत पुराण के तीसरे स्कन्ध में पच्चीसवें अध्याय पर्यन्त वर्णित है। उनकी माता देवहूती ने कहा–प्रभो! इस दुष्ट इन्द्रियों की लालसा से मैं बहुत दुःखी हूँ और इनकी इच्छा पूरी करते रहने से घोर अज्ञानान्धकार में पड़ी हूँ।[5]

तत्पश्चात् उनके प्रश्नों का उत्तर देते हुए उन्होनें कहा कि माता! यह मेरा निश्चय है कि आध्यात्मयोग ही मनुष्यों के आन्तरिक कल्याण का मुख्य साधन है। जहाँ अपनी माता को आत्म ज्ञान कराने हेतु उनका अवतार हुआ था। कपिलमुनि स्वयं कहते हैं–इस लोक में मेरा जन्म लिंग शरीर से मुक्त होने वाले मुनियों के लिए आत्मदर्शन में उपयोगी प्रकृति आदि तत्वों का विवेचन करने के लिए ही हुआ है। इसे पुनः प्रवर्तित करने हेतु ही मैंने यह शरीर ग्रहण किया है। माता देवहुति को भी मैं सम्पूर्ण कर्मों से पार उतारने वाला आत्मज्ञान प्रदान करूँगा, जिससे यह संसार सागर से पार उतर सकें। क्योंकि आत्मदर्शन रूप ज्ञान ही मोक्ष का कारण है और यही हृदय ग्रन्थि का छेदन करने वाला है।[6]

आत्मज्ञान होना ही तत्वज्ञान कहलाता है, चूँकि तत्वों का ही विवेचन सांख्यशास्त्र में हुआ है, इसलिए सांख्यशास्त्र ही मोक्षदायक है। भागवत पुराण के तृतीय स्कन्ध में सांख्य दर्शन के अनुसार ही प्रकृति और पुरूष का विवेचन हुआ है। इस प्रकार सांख्य के समान ही इसमें भी चौबीस तत्व माना गया है।[7] किन्तु इसके अतिरिक्त एक तत्व जो पच्चीसवां तत्व काल माना गया है। इसलिए श्रीमद्भागवत में वर्णित कपिल का सांख्यशास्त्र सांख्यकारिका से भिन्न है।

मोक्ष का वर्णन श्रीमद्भागवत में अनेक स्थलों पर किया गया है, जिसमें मुख्य रूप से सांख्य का ही सहारा लिया गया है। एकादश स्कन्ध में बन्ध और मोक्ष के वर्णन में सांख्य का ही आलम्बन किया गया है। सांख्य दर्शन के अनुसार ही भागवत में भी प्रकृति–पुरूष के विवेक से मोक्ष की प्राप्ति का वर्णन किया गया है। सांख्य–दर्शन में मन और शरीर का अत्यन्त गहरा सम्बन्ध है।

सांख्य–दर्शन में मन–शरीर के सम्बन्ध के प्रश्न को लेकर उस तरह की समस्या खड़ी नही होती है जिस तरह की पाश्चात्य दर्शन में। इसका मूल कारण यह है कि पाश्चात्य दार्शिनिक मन को शरीर से पूरी तरह से अलग मानते है और मन का आत्मा से तादात्म्य स्थापित कर लेते है। सामान्यतः पाश्चात्य–दर्शन में शरीर और मन के बीच द्वैत को स्वीकार किया गया है। जिन्हें गुणात्मक रूप से दो भिन्न स्तरों से सम्बद्ध माना जाता है। किन्तु साख्य–दर्शन में मन और शरीर कें बीच इस प्रकार का कोई भी भेद स्वीकार नही किया गया है। इसका कारण यह है कि सांख्य शारीरिक और मानसिक दोंनों अस्तित्व एक ही तत्व (प्रकृति) पर आधारित मानता है। ये प्रकृति के दो भेद मात्र है। मानसिक और शारीरिक अस्तित्व के बीच सूक्ष्मता के परिमाणानुसार अन्तर अवश्य किया जाता है किंतु वह भेद एक ही प्रकार के अस्तित्व के बीच गुण का नही केवल मात्रा का ही भेद है। जाति की दृष्टि से वे एक ही वर्ग 'अव्यक्त' के अंतर्गत आते हैं। मन सूक्ष्म होने के कारण शरीर की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली है, आत्मा के प्रकाश से प्रकाशित होकर ही मन और शरीर अपने समस्त कार्यो को संपादित करते है। सांख्य के अनुसार वे उस समय तक अचेत न ही बने रहते है जब तक पुरूष की अनुभवातीत चेतना का प्रतिबिम्ब ग्रहण नही कर लेते है।

यहाँ प्रकृति त्रिगुणात्मक है। ये तीन गुण सत्व, रजस एवं तमस है जिनके स्वभाव क्रमशः प्रकाशस्वरूप, क्रिया स्वरूप एवं स्थिति स्वरूप है। मानसिक जगत में ये गुण स्पष्टीकरण, प्रेरणा एवं आवरण का कार्य करतें है। प्रकृति के तीनों गुण उसमें सम्पृक्त है।[8] तीनों गुणों का सम्बन्ध कभी भी विच्छेद नही होता है। बल्कि शरीर की छाया की तरह प्रत्येक गुण अन्य दो गुणों का अनुवर्तन करता है।[9] प्रत्येंक गुण अन्य दो गुणों का अंश मौजूद रहता है। ऐसी कोई भी वस्तु नही है जो केवल एक गुणात्मक हो। प्रत्येक प्रधान गुण अन्य दो अप्रधान से अनुरंजित हो सृष्टि करता है। जब सत्व गुण की प्रधानता होती है तो मन और इंद्रियों की उत्पत्ति होती है जब तमोगुण की प्रबलता होती है तो शरीर स्थल शरीर की अतः यह बात साफ हो जाती है ककि मानसिक एवं शारीरकि दोंनो जगत में प्रकृति के ये तीनों ही गुण व्याप्त है।[10]

जब हम पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों के विचारों को देखते है तो यह पाते हैं कि यहाँ मन को विषयी एवं विषय दोनों रूप में स्वीकार किया गया है। किंतु सांख्य–दर्शन में ऐसा नही है। सांख्य विषयी एवं विषय दोनों एक दूसरे से एकदम अलग अस्तित्व रखते है। ये एक ही तत्व के पहलू नही है। विषयी स्वरूप मन आत्मा तथा विषय स्वरूप मन अंतःकरण या मनस है। अतः सांख्य विचारधारा पाश्चात्य धाराणा के बिल्कुल विपरीत है। किंतु पाश्चात्य दार्शनिक रसेल के विचार सांख्य के समान है।

सम्पूर्ण भारतीय दर्शन के समक्ष यह अत्यंत अहं प्रश्न है कि मन को इंद्रिय माना जाए या नहीं। अद्वैत–वेदान्त मन को इंद्रिय के रूप में नही स्वीकार करता है। क्योंकि मन प्रामाणिक ज्ञान का कारण नही बल्कि आधार है। श्रुतियाँ भी इस बात का समर्थन करती हैं। न्याय–वैशेषिक मन को आंतरिक इंद्रिय मानते हैं। भगवद्गीता में भी कुछ इसी तरह की बात कही गयी है। वहाँ कहा गया है– 'मन छठी इंद्रिय है।[11]' चरक–संहिता में भी इस बात का समर्थन किया गया है सांख्य ग्यारह इंद्रियों में एक मन और पांच ज्ञानेन्द्रियाँ एवं पाँच कमेन्द्रियाँ शामिल है। क्योंकि मनचक्षु से संयुक्त होकर ज्ञानेन्द्रिय तथा वाक् इत्यादि कमेन्द्रियाँ अपने विषय में प्रवृति होती हैं। न्याय दर्शन मन को नित्य, निरवयव तथा अणुरूप मानता है। विज्ञान भिक्षु मन को क्रिया युक्त मानते है। मन विभु नहीं है। मनल निरवयव नहीं क्योंकि उसका इन्दियों के साथ संयोग होता है। इसके विपरीत योग एवं भट्ट मीमांसक मन को विभु मानते है। संकुचन एवं प्रसारण ये अंतःकरण की वृत्तियाँ है, मन की नही। सांख्य के साथ–साथ अद्वज वेदान्ती भी मानते है कि यदि मन विभु होता तो कोई भी व्यक्ति किसी भी समय सभी वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त कर लेता लेकिन ऐसा नही होता है। अंतः मन विभु नहीं हो सकता है। मन सावयव है। इसमें संयोग एवं वियोग होता है। मन अणु रूप भी नही है। मन को सावयव मानने में कोई कठिनाई नही है।

सांख्य के अनुसार मन और शरीर दोंनों एक दूसरे के सहगामी है मन के बिना शरीर तथा शरीर के बिना मन अपने कार्यो को सम्पादित करने में असमर्थ है। मन के अभाव में इन्द्रियों को अपने–विषयों का ज्ञान नही होता। मन कहीं अन्तत्र हो तो विषय का ज्ञान सम्भव नही है। अतः मन के बिना इंद्रियों को बाह्य विषयों का ज्ञान नहीं हो सकता है। सांख्य आचार्य कहते है कि मन से ही संयुक्त होकर चक्षु इत्यादि ज्ञानेन्द्रियाँ तथा वाक् आदि कमेन्द्रियाँ अपने–अपने विषयों में प्रवृत्त होती हैं। न्याय–वैशेषिक का भी अनुमोदन सांख्याचार्यों को प्राप्त हो जाता है। इनका भी कहना है कि यदि मन कहीं अन्यत्र लगा हो तो इंद्रिय का विषय से संयोग होने पर भी प्रत्यक्ष नही होता है। पहले इंन्द्रिय का मन से संयोग होता है फिर इन्द्रिय संयुक्त मन का आत्मा से संयोग होता है तब प्रत्यक्ष ज्ञान होता है।

मन अतीन्द्रिय होने से शरीर के अंतर्गत ही अपने कार्यो को सम्पादित करता है। यहाँ एक प्रश्न यह भी मन को उद्वेलित करता है कि मन का निवास स्थूल शरीर में कहाँ है? योग–दर्शन प्रणेता पंतजलि हृदय को मन का निवास–स्थल बताते है। नैयायिकों के अनुसार प्रत्येक शरीर में एक मन है तथा वह सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त रहता है। निद्रा की अवस्था में वह पुरीतन नाड़ी में निवास करता है। अद्वैत वेदांती भी सेश्वर सांख्य के सुर में सुर मिलाते हुए हृदय को मन का निवास स्थल मानते है।

जन्म के समय मनुष्य का मन सफेद स्लेट की तरह नही रहता है जैसा कि पाश्चात्य दार्शिनिक लॉक (स्व्ज्ञ) मानता है बल्कि

संस्कारों से घिरा रहता है। सांख्य मानता है कि जन्म–जन्मांतर के संपूर्ण अनुभव के संस्कार मौजूद रहते है। वासनाओं का आश्रय भी मन है। यह शरीर पूर्व जन्मों के कर्मो का परिणाम है। मन प्रत्येक जीव के समस्त संस्कारों के साथ रहता है तथा मृत्योपरांत कर्मानुसार अन्य शरीर में उन समस्त संस्कारों के साथ चला जाता है। जीव अपने कर्मानुसार अनेक योनियों में विचरण करता है। वही जीव कभी पक्षी, कभी पशु और कभी मनुष्य आदि योनियों को प्राप्त करता रहता है।

अंततः यह बात माननी ही पड़ेगी कि सांख्य मन एवं शरीर के घनिष्ट सम्बन्ध को स्वीकार करता है। मन और शरीर दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। इनके बीच न तो अंतर्क्रियावाद का सम्बन्ध है जैसा देकार्त मानते है, न ही समानांतरवाद का सम्बन्ध है जैसा कि स्पिनोजा ने बताया। इसके संबंध को वह सहसम्बन्ध का नाम दिया जा सकता है। चूँकि मन और शरीर एक ही तत्व से उत्पन्न है अतः दोनों एक निश्चित नियम के अनुसार अपने–अपने कार्यो के सम्पादन में एक दूसरे की सहायता करते रहते है।

संदर्भ–सूची

1. भा0पु0 3.25.31, 3.33.7
2. सृजतीं सरूपाः प्रऔतिं प्रजाः ।। भा0पु0–3.26.5
3. तदैव, 11.24.19
4. भा0पु0 3.27.23
   योग आध्यात्मिक पुसा मन्ते निः श्रेयसाय में।
5. आत्यन्तोपरतिर्यत्र दुखस्य च सुखस्य च।। भा0पु0. 3.25.12
6. ज्ञानं निःश्रेयसार्थाय पुरूषस्यात्म आत्म दर्शनम्।
   युद्वाहवुर्णये तत्ते हृदये ग्रन्थिभेदमन्।। भा0 पु0–3.26.2
7. भा0पु0 – 3.26.15
8. देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्व भारत। श्रीमद् भ0 गीता 2.30
9. म0भा0शा0 पर्व 194–15
10. म0भा0शा0 पर्व 194–27, 29
11. म0भा0शा0पर्व 194–11